भाव-योग

लेखक :
नन्दलाल शर्मा

दो शब्द

पुस्तक लिखने के पूर्व दो शब्द लिखने की परिपाटी है। क्या लिखा जाय व क्या वर्णन किया जाय उसके विषय में जो स्वयं में पूर्ण है।

योग का ही विशेष स्थान है इस जीवनकाल में। भाव-योग तो प्रभु की देन है। भाव की बातें ही सुन पाता है, भाव को यदि देख पाता तो आनन्दी जीवन होता, भावमग्न हो पाता।

भाव ही तो भगवान है। प्रतिमा, प्रतिमा नहीं होती सजीव रूप से मूर्त्तमान होती है जब भावमग्न होता है। अटपटे बैन होते हैं, अनोखे-अनोखे कार्य होते हैं। स्वयं का भी भान भुला देता है भाव।

अनेक लोगों ने बहुत कुछ कहा अन्य विषयों पर। अनेक ग्रन्थ जिसके परिचायक हैं। लेकिन 'भाव-योग' अछूता विषय ही रहा। जब-जब 'भाव-योग' के विषय में कुछ कहने का प्रयास किया गया, वाणी मौन हो गयी, लेखनी विराम को प्राप्त हुई।

भाव तो अवस्था विशेष है। शब्द तो संकेत दे पाते है अवस्था विशेष का। उसके अनुसार यदि स्थिति हुई तो आनन्द ले पाता है प्राणी भाव का।

'भाव-योग' पुस्तकाकार रूप धारण कर प्रस्तुत है। प्रयास किया गया है प्राणी अभाव जगत को छोड़ भाव की बातें सुन भाव में आ सके। यदि ये बातें अल्पांश में भी सहायक सिद्ध हुई तो भाव-योग को भी जाना जा सकेगा ऐसा अनुमान किया जाता है।

ज्योति की किरण के लिए तरसता प्राणी यदि पूर्ण आलोक पा जाये तो उसके सौभाग्य का कैसे वर्णन किया जाये ? यह जीवन सदा-सदा के लिए उसी का हो रहा जिसने उसे प्रकाश दिया।

मेरे प्रभु - तेरा यह प्रकाश जो तूने भाव-योग के रूप में रखा है अनेकों को प्रकाशित करता रहे, यही तेरे चरणों में प्रार्थना है।

भाव-योग

योग की परिभाषा अनेक महापुरुषों ने अनेक प्रकार से की तथा अपनी-अपनी पहुँच के अनुसार उनकी परिभाषा उत्तम ही रही। योग के अर्थ भी अनेक। जोड़ भी योग, मिलन भी योग। योग्य के लिए अनेक योग। योग विधि बतलाता, ह्रदय की कली भी खिलाता, मानवीय दुर्बलताओं से मुक्त भी कराता और देता है कुछ ऐसी प्रेरणा और शक्ति कि मनुष्य अभाव को भूल स्वभाव की ओर अग्रसर होता।

स्वभाव की भी परिभाषा है। आदत और प्रकृति को साधारण जन स्वभाव कहते हैं। किन्तु आदत और प्रकृति स्वभाव नहीं। भाव जो "स्व" की ओर ले जाये वह है स्वभाव। "स्व" कौन? "स्व" मौन। "स्व" को जानने के लिए स्वाध्याय, साधना, उपासना के द्वारा विज्ञ जन प्रयास करते हैं। प्रयास यदि सफल हुआ तो "स्व" को स्वभाव को जान भी पाते हैं।

योग तो सोपान (सीढ़ी) है आत्म साक्षात्कार के लिए। आत्म साक्षात्कार शब्द भ्रमात्मक नहीं, तथ्य है किन्तु है उनके लिये जिन्होंने आत्मा की महत्ता को स्वीकार किया है। यह संसार है, जिसमें अनेक प्रकार के लोग आते हैं और काल की अवधि समाप्त कर चले जाते हैं। इन जानेवाले और आनेवाले लोगों में योग का आश्रय लेनेवाले अति अल्प। संसार के खेल देखे और सांसारिक हो गये। मन्दिर-मस्जिद इनके लिए उपेक्षा के स्थान बन गये। मन्दिर-मस्जिद से योग की प्राप्ति है, यह कहना उचित नहीं। इन स्थानों पर आते जाते रहने से कभी-कभी योगी के दर्शन सम्भव हैं। होंगे ही यह कहना ठीक नहीं। यों तो योगी रमता राम। योग कष्ट साध्य, कथन में सत्यांश है। कुछ योग आनन्द दायक। योग तन का, योग मन का। तन का योग

कष्टदायक, मन का योग आनन्द दायक। तन, मन की क्रिया सहयोगी न बने तो योग कैसे सम्भव ?

योग की आवश्यकता है जीवन में। विद्या का योग हुआ, मनुष्य साक्षर हुआ। यदि योग न होता तो मनुष्य विद्या से लाभ न उठा पाता। यह भी योग है कि कुछ लिखा जा रहा है और यह भी योग है कि कुछ पढ़ा जाता है। योग की ओर ध्यान न देता हुआ मनुष्य संयोग की ओर आकर्षित होता है। यह भी संयोग है कि प्राणी मनुष्य के रूप में धराधाम पर आया। संयोग तो मिला, किन्तु योग न मिला तो संयोग किस काम आया।

योगी कह कर यदि किसी को सम्बोधित किया जाय तो प्राय: देखा जाता है कि मनुष्य गौरव अनुभव करता है। गौरव अनुभव करना एक प्रकार का अहंकार ही तो है। जहाँ अहंकार वहाँ योग बेकार। योग अहंकार रहने नहीं देता। योगी और अहंकारी ये विपरीत धारणा है। कुछ धारण किया है तभी तो योग के पथ पर अग्रसर होगा। यह अहंकार क्या है ? अहंकार एक ऐसा भाव है, जो मनुष्य को कुछ ग्रहण नहीं करने देता। अहंकार कुछ कम हुआ कि मनुष्य को वस्तु स्थिति का ज्ञान होता है। अब कुछ सीख सकेगा। अहंकार का ज्वर कुछ कम हुआ कि अन्य क्रिया प्रारम्भ। यह अन्य क्रिया क्या है ? योग। योग के लिये अहंकार शून्य होना पड़ता है। अहंकार शून्य व्यक्ति हो नहीं पाता अत: पूर्ण योग होना असम्भव हो जाता है। कुछ क्रियाओं की जानकारी मनुष्य को पूर्ण योगी कैसे बना पायेगी ?

मनुष्य संसार में आया है योग के लिए, योग की पूर्णता के लिए। योगी हो नहीं पाया तो भोगी बन बैठा। भोग की तीव्र लालसा ने उसे अयोग्य बना दिया। भोग ने क्या दिया मनुष्य को ? चिन्ता दु:ख घृणा ईर्ष्या। जीवन का सार असार हुआ अत: संसार भी उसे असार प्रतीत हुआ। भोग और योग में

कौन महान्? कहने के लिए योग। भोग से फुरसत पाना कठिन, अत: योग की ओर ध्यान कहाँ? जहाँ ध्यान नहीं वहाँ योग कहाँ? कहाँ-कहाँ कहता हुआ प्राणी जब यहाँ (संसार) आया तो खोजने लगा भोग। भोग से तृप्त न हुआ प्राणी। जलन मिटी कहाँ, बढ़ती ही गयी। गयी कहाँ, बढ़ती ही रही। रही और ऐसी रही कि योग के समीप भी न जाने दिया। तो क्या अहंकार और भोग एक हैं? अहंकार ही भोग रहा है। भोग में अहंकार की ही प्रधानता रहती है। भोग अहंकार का पिष्ट पोशक है। भोग और अहंकार, अहंकार और भोग ने मनुष्य को बेहाल कर रखा है। यदि भक्ति करे वहाँ भी अहंकार कि मैं भक्त हूँ। भक्त है तो भक्ति का आनन्द ले, अहंकार क्या करता है? अहंकार तुझे शान्त न होने देगा और देगा ऐसा भाव जिसे क्रोध कहते हैं।

विचारों का संघर्ष ही ऐसा है कि मनुष्य जीवन को सुखमय नहीं बना पाता। विचारों के संघर्ष ने ही भिन्न-भिन्न धर्मों को जन्म दिया। धर्म के नियम उपनियम पुस्तकों के कलेवर बढ़ाते चले आ रहे हैं किन्तु शान्ति कहाँ? धर्म का दीपक कुछ समय के लिए मनुष्यों को प्रकाशमय प्रतीत हुआ, किन्तु प्रकाश कहाँ, अन्धकार तो आज भी ज्यों का त्यों है। यदि ये धर्म प्रकाश का कारण होते तो धर्म के नाम पर इतनी नर हत्यायें न होती और न होती पशु हत्यायें जिन्हें मनुष्य आज भी धर्म के नाम पर कर प्रसन्न होता है। अजब है इनका धर्म जो किसी को भी शान्ति न दे सका।

योग यदि सात्विक है तो वहाँ हत्या का कार्य नहीं। यों तो तान्त्रिक योग में मांस आदि पदार्थों का प्रयोग करते हुए सुने गये। योग हत्या नहीं चाहता है, चाहता है मिलन ज्ञात, अज्ञात का। वायु का योग न हो तो प्राणी के प्राणों में गति असम्भव। शरीर के भिन्न अवयवों के योग से शारीरिक कार्य सम्पादित होते हैं। जिस पंच भौतिक शरीर की निन्दा तथा प्रशंसा की जाती है यह भी तो योग है पंचभूतों का। योग के अभाव में शान्ति कहाँ? शान्ति के

अभाव में जीवन, धर्म, कर्म किस काम आये। विश्व का निर्माण व्यर्थ सिद्ध होगा यदि शांति प्राप्त न हुई।

सुप्त भावनाओं को जाग्रत करने के लिए ही योग है अन्यथा इस शब्द की सार्थकता व्यर्थ ही होती। सार्थकता व्यर्थ है नहीं। योगी यथार्थ योगी ही विश्व के आनन्द का उपभोग करता है। क्षुद्र मिट्टी के कणों का योग घट निर्माण का कारण बनता है।

योग और वियोग जिसे आधुनिक काल में क्रिया और प्रतिक्रिया कहते हैं वस्तु या प्राणी के सृजन और विसर्जन का कारण है। चरित्र बनता है योग के आधार पर। चरित्रवान व्यक्ति योग का प्रयोग करता है ज्ञात अज्ञात अवस्था में। साधारण व्यक्ति महावीर या बुद्ध क्यों नहीं हो पाता? योग का अभाव है। साधारण जन उनके गृह त्याग उग्र उपासना को प्रधानता देते हैं, किन्तु यदि योग न हो पाता उनका महायोग से जिसे महाशक्ति आदि नाम से पुकारते हैं तो सब व्यर्थ होता। योग हुआ योगी हुए। उनकी पूजा हो या न हो कोई विशेष अर्थ नहीं।

योग में स्वत: शान्ति है। मन की विकलता योग के लिए बाधक है। मन की दृढ़ता तथा प्रसन्नता सहायक होती है योग के लिए। मन को एकाग्र करने के लिए जप, तप लोग करते हैं किन्तु जब तक मन को रस नहीं मिलता तब तक क्रिया ही प्रधान, कार्य की सिद्धि नहीं हो पाती। कुछ न कुछ राम के नाम पर करते रहना अच्छा है किन्तु रस कहाँ? रस के अभाव में प्रसन्नता कहाँ? प्रसन्नता के अभाव में प्रेम कहाँ? प्रेम के अभाव में योग कहाँ? योग के अभाव में चिरशान्ति कहाँ?

क्षणभंगुर शरीर का योग न हो सका महायोग से, आवागमन व्यर्थ। व्यर्थ को सार्थक बनाने के लिए ही योग परमावश्यक है। बीज का भूमि से योग

हुआ स्नेह रूपी जल से बीज, बीज ही न रहा हो गया महावृक्ष। जीव शिव हो गया योग के कृपा बल से।

यौगिक चमत्कार देखकर मनुष्य आज भी आश्चर्य के सागर में गोता लगाने लगता है। ये चमत्कार कष्ट साध्य अवश्य हैं किन्तु ये चमत्कार यहीं तक प्रसिद्धि प्रशंसा के कारण बनते हैं, शाश्वत शान्ति के कारण नहीं। मनुष्य आज भी अबोध बालक है वह इन यौगिक चमत्कारों के सम्मुख नत मस्तक हो जाता है किन्तु जिस योग की चर्चा की जा रही है वह चमत्कार का कारण नहीं बनता, मानसिक शान्ति प्रदाता है। मनुष्य आज भी प्रदर्शन में लगा है, आत्म दर्शन में नहीं। सब कुछ पाकर भी कुछ ही पाता है जब तक आत्म सन्तोष, आत्म दर्शन कर नहीं पाता।

चमत्कार क्या मानसिक शान्ति दे सके? यदि नहीं तो क्यों काया कष्ट उठाया? क्यों अमूल्य समय यों ही बिताया? प्रकृति के रहस्य अनोखे जब मनुष्य इन चमत्कारी योग को अपनाता है तो उसका नाता प्रकृति खेल तक ही रह जाता है, शान्ति, सन्तोष कहाँ। युग के युग बीते, मनुष्य का बचपन न गया। यौगिक चमत्कार को नमस्कार करना बचपन नहीं तो क्या है? मनुष्य की साधारण बुद्धि शीघ्र ही धोखे में आ जाती है। ब्रह्म, ईश्वर की उपासना करनेवाला भी यदि इन चमत्कारों को प्रधानता देने लगा तो अन्य जनों की अवस्था क्या होगी? समय का सदुपयोग सत् चिन्तन में है न कि इन चमत्कारों की प्राप्ति में है।

योग एक महाशक्ति है जिसने इसे अपनाया जीवन को मधुर बना सका। जीवन का महासंगीत योग। कर्म की उपेक्षा मनुष्य जब जब करता है अशान्त हो जाता है। अशान्ति मनुष्य के जीवन को भार बना देती है। अशांति आयी कहाँ से? कर्म की अवहेलना की, योग का आश्रय न लिया तो अशांति

गयी कहाँ थी, साथ ही थी। योग तो योग्य बनाता मनुष्य को। जगत का कोलाहल हो रहा है योगी योग का आनन्द ले रहा है। योगी की सृष्टि ही भिन्न होती है जहाँ सांसारिक झंझटों की पहुँच नहीं।

योग की प्रणाली है। जिस योगी ने जिस तरह शांति पायी तथा क्रिया कलाप से मन को मनाया या शांत किया उसकी विधि उसने अपने अनुयायियों को बतलायी। सबकी क्रिया एक सी कैसे हो सकती है? भिन्न रुचि, भिन्न कार्य। तामसिक विचार। तामसिक विचारवाले तांत्रिक कहलाये और राजसिक वाले कर्म योगी। सात्विक विचार वालों ने इन दोनों की प्रणाली को न अपनाया। शान्त प्रकृति वाला ही सात्विक हो सकता है। इन लोगों ने भक्ति योग, प्रेम योग अपनाया। प्रश्न होता है योग की भी श्रेणियाँ होती हैं? हैं, क्यों नहीं, विचार धारा के अनुसार ही मनुष्य कार्य करता आया है, परिणाम शुभ हो या अशुभ।

शुभ और अशुभ की मान्यता ने मनुष्य को भ्रमित कर दिया। प्रतिकूलता, अनुकूलता के खेल हैं जिन्हें मनुष्य देखता आया है। देखता कहाँ, भोगता आया है। प्रत्येक क्षण, छन छनकर कुछ कहता है किन्तु कहने पर ध्यान न देता हुआ मनुष्य कार्यों में इतना अस्त व्यस्त रहता है कि जीवन का अस्त हो जाता है समझ ही नहीं पाता कि जीवन संध्या क्यों आ गयी? अभी तो उसे बहुत कुछ करना था। अधूरी कल्पना पूरी न हुई और अन्य कलेवर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

भविष्य के लिए व्याकुल, वर्तमान में चिन्ता से आकुल, बीता वह भूत बन गया, अब वह क्या करे कि उसे शांति मिले। हाट बाट में उसे शांति कुछ देने पर मिलती तो शायद वह शांति खरीद लेता किन्तु शांति तो कोई वस्तु नहीं, यह तो मन के भाव हैं जो व्यक्ति को शान्त कर सकते थे यदि योग का

प्रभाव जीवन में स्थान पाता। आता और जाता कुछ न पाता तो क्यों आता और क्यों जाता? जाना अनिवार्य था और आना भी। योग होता योग से तो आना भी सार्थक होता और जाना भी। योग की ओर उसने ध्यान ही न दिया, दिया भोग की ओर फलस्वरूप आवागमन से मुक्त न हो सका। मुक्त और युक्त का भाव भी मनुष्य कब जान पाया, जब तक जिसे पाना था उसे न जान पाया।

भोग अग्नि है और योग मानसिक जल। जलते हैं प्राण किन्तु शांति रूपी जल न मिला तो जलेगा ही, चाहे आँखों में दु:ख के कारण कितना ही जल आये, चाहे शरीर ही क्यों न जल जाये। जलन का कारण योग नहीं, भोग है। भव और भोग। भव में आया तो क्या केवल भोग के लिए? नहीं, नहीं केवल भोग के लिए नहीं, योग के लिए। परम योगी की परम शांति देखकर भी मनुष्य ने केवल नमस्कार ही किया, योग का आश्रय न लिया। कांटों के गीत गाने वाले, फूल की सुगंध से वंचित ही रहे। जीवन की अवधि आशा निराशा में बीती और चलते समय छटपटाते ही चले। दु:ख से उपराम पाने के लिए राम से योग न किया तो दु:ख चिरबन्धु बनेगा ही इसमें आश्चर्य क्या? क्या और क्यों प्रश्न ही बने रहते हैं जब तक इनका समाधान न किया जाये। समाधान क्या भोग करेगा? भोग जलन है, योग मिलन। पार्थिव वस्तुएं भोग की ओर आकर्षित करती हैं तथा योग का पथ योग कराता है महायोग से जहाँ परम शांति है।

परम शांति इसी भव में है इसे स्वीकार करने वाले मनुष्यों की संख्या अति अल्प। लक्ष्य-हीन जीवन, जीवन नहीं, भार है प्राणी के लिए, भव के लिए। चिन्तित, दुखित मनुष्य की आकृति देखकर यही न विज्ञ कहेगा कि इसकी कौन-सी कृति का फल है कि आकृति ही मलिन हो गयी। केवल भोग ही नहीं अहंकार का भार भी साथ ही लिये घूमता है। रोग अनेक मानसिक,

शारीरिक। योग? योग होता तो यह मानसिक रोग तो न होता जो चिन्ता दु:ख आदि में बदल जाता है। कल्पना के चित्र धूमिल न पड़ते यदि योग का आधार होता। साधन न किया तन से, मन से तो शांति कहाँ?

साधन की भिन्नता के कारण योग का नामकरण भिन्न हो जाता है। प्रथम योग की ओर ध्यान ही कितने व्यक्ति करते हैं? कुछ करते हैं तो उनकी प्रणाली भिन्न होती है। सहज योग को तो योगी, योग ही नहीं मानते। उनका योग तो कुछ ऐसा होना चाहिए जिसमें काया कष्ट अधिक हो। योग के लिए श्मशान सेवी भी योगी होते हैं। भूत की कल्पना तथा भूत को सिद्ध करने में यदि पंचभूत धारण करने वाला व्यक्ति लगा तो उसने व्यर्थ ही पंचभूत धारण किया। शरीर भस्मीभूत हुआ अब भूत कहाँ से पैदा हो गया? वाह रे मनुष्य की कल्पना भूत-भूत-भूत ही उसे श्मशान में दिखलायी देने लगा। कल्पना भगवान की न की। यदि करता तो सभी स्थान उसके लिए तीर्थ-स्थान बन जाते। भूत की कल्पना केवल श्मशान में ही नहीं करता, अन्य स्थानों में भी वह भूत देखता है। योगी भूत को सिद्ध करना चाहता है। यह तांत्रिक है, यह योगी है।

प्रेम से प्रभु का स्मरण कर आत्म विभोर हो जाता मनुष्य, तो योग होता महाशक्ति से। न भूत की साधना करनी पड़ती और न श्मशान का सेवन करना पड़ता। न जाने मनुष्य की कैसी दुर्बुद्धि है कि वह सरल मार्ग को न अपनाकर इन टेढ़े-मेढ़े रास्तों को अपनाने का प्रयास करता है। एक ओर माला लेकर भक्त कहलाने के फेर में मनुष्य लगा है और दूसरी ओर श्मशान सेवी बनकर सिद्ध पुरुष बनना चाहता है। मन के खेल अनोखे। इन्द्रियातीत कहकर मनुष्य ने उसे अति दूर किया या कष्ट साध्य यह विचारणीय है।

योग के अभाव में शरीर की स्थिति असम्भव। वायु का प्राणों से योग न हो तो शारीरिक क्रिया-कलाप की इतिश्री हो जाती। अन्न जल का योग

शरीर में शक्ति प्रदान करता है। कहाँ तक योग की आवश्यकताओं का उल्लेख किया जाये? सर्वत्र योग ही योग। योग के अभाव में सृष्टि का कोई भी कार्य नहीं हो सकता। ऐसे योग की ओर तो मनुष्य का ध्यान ही नहीं जाता। योग न हो तो प्राणी धरा पर आ ही नहीं सकता। प्रकृति केवल मानव प्रकृति ही नहीं स्थूल प्रकृति की ओर अवलोकन करें वहाँ भी यौगिक चमत्कार देखने को मिलते हैं।

समुद्र का गर्जन, भूमि का बीजारोपण, बिजली का प्रकम्पन, पर्वतों का उच्चस्थापन, सूर्य चन्द्र की किरण योग का ही तो प्रदर्शन है। इस ओर मनुष्य का ध्यान ही नहीं जाता वह तो योगी के चमत्कारों को आश्चर्य से देखता है। कण-कण में यहाँ आश्चर्य है। वाणी का संयोग वायु से हुआ शब्द होने लगा। शब्द चाहे सार्थक हो या निरर्थक। अनेक प्राणियों का निवास स्थल समुद्र है और अनेक का आकाश किन्तु मनुष्य को अवकाश कहाँ कि इन्हें जाने और इनसे लाभ उठाये। पृथ्वी पर जो पेड़-पौधे हैं उनसे लाभ उठा नहीं पाता। विचित्र है संसार और उससे भी अधिक इनका बनाने वाला।

श्री राम और श्री कृष्ण जिन्हें हम हिन्दू भगवान मानते हैं उनके पूर्व से यह पृथ्वी चली आ रही है, कोई इसका रहस्य जान पाया? वैज्ञानिक कहेंगे अग्नि का गोला ठंडा होते-होते पृथ्वी बन गया। दो सौ वर्षों के ये महापंडित केवल कल्पना के आधार पर जो कुछ भी कहें अनुमान ही अनुमान है। हाड़ मांस का निर्मित यह शरीर जिसमें असंख्य सूक्ष्माति सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं इनकी विशेषता क्या मनुष्य जान सका? अल्पाति अल्प जानकारी पर मनुष्य इतराता है। योग ही इन समस्याओं का हल करता आया है और करता रहेगा।

मिट्टी की मूर्ति भी बोलती है, वायु भी संदेश लाती है, मिट्टी भी सोना बन जाती है। इन्हें हम जान भी पाये और नहीं भी। इड़ा, पिंगला, सुषूम्ना

कुण्डलिनी का भेद भी कुछ योगी जान पाये किन्तु जानकारी का अन्त क्या यहीं हो गया? नहीं, पिण्ड को जानो, ब्रह्माण्ड को जानो कहने वाले भी आये किन्तु इस तत्व के जानकार भूमि पर कितने हैं? कहने वाले कुछ हैं किन्तु जानकार हैं कि नहीं यह कहना कठिन है। योग ही जानकारी की कुंजी है।

कुछ योग मनुष्य ने देखे और कुछ ने क्रिया के द्वारा सिद्ध भी किया किन्तु योग की इति श्री समझना अल्पज्ञता है। आज विज्ञान के योग पर मनुष्य मोहित है। परिणाम की आशंका मनुष्य को सशंकित कर रही है। उद्देश्य की महत्ता की ओर मनुष्य का ध्यान न गया तो पृथ्वी पर उसका रहना दुष्कर होगा। योगी और भोगी दोनों ही चले जा रहे हैं अपनी राह किन्तु भोगी आह में लगा है और योगी वाह में। राह वही यह कैसे कहा जाय? लक्ष्य को पीठ देकर भी मनुष्य चला आ रहा है और लक्ष्य के सम्मुख भी चला जा रहा है। यह आना और जाना मनुष्य की प्रकृति की भिन्नता बतलाता है। संख्या को प्रधानता देने वाले यहाँ चक्कर में पड़ जायेंगे। योगी अति अल्प, भोगी की संख्या का कहीं अन्त नहीं।

निन्दा और स्तुति ये दो शब्द हैं। निन्दा भी होती है स्तुति भी। निन्दा का बाजार इस युग में अधिक और स्तुति जिनकी की जाती है, यदि वे यथार्थ योगी हैं तो उन्हें स्तुति की आवश्यकता नहीं, वे तो अपना काम किये जा रहे हैं। सूर्य प्रकाश दे रहा है, कोई उसे नमस्कार करे या न करे, प्रकाश देना ही उसका कार्य रहा है। योग की चर्चा योगी नहीं बनाती, यह तो चर्चा मात्र है। योग की उपलब्धि से ही योगी प्रसन्न, प्रशंसा से नहीं। चमत्कारी योगी ने अपनी जादूगरी से भ्रमित ही किया, लाभान्वित न कर पाया जनसाधारण को। इनसे तो कुछ अंशों में विज्ञानवेत्ता ही अच्छे रहे, जिन्होंने भोगियों की मांग में वर्द्धन किया। चमत्कार बुरा नहीं, चमत्कार दिखलाना बुरा।

योग सरलता चाहता है तन की, मन की। तन की विशेष क्रिया को योग मानना, योग की महत्ता को कम करना है। मन ही तो मनुष्य को शान्त नहीं रहने देता अत: मन का योग, तन के योग से अनेक अंशों में मुख्य है। मन न चाहे तो तन का योग सम्भव नहीं। कण-कण का योग पर्वत बना देता है। मनुष्य जानता हुआ भी अज्ञानी बना बैठा है। गुण का योग गुणी तथा अवगुण का योग अवगुणी बनाता है। बनता है और बनाता है इसमें जीवन लीला समाप्त। समाप्त कार्य नहीं होते और न आशा। इस आशा का तमाशा भी अजब है। जब-जब भूमि पर आया चाहे किसी भी वेश में क्यों न आया हो, आशा और तृष्णा साथ ही रही। "आशा तृष्णा ना छूटी कह गये दास कबीर"। अनुभव की बात है। कार्य करता हुआ भी अनुभव न करे तो कार्य की श्रृंखला से मनुष्य मुक्त नहीं हो पाता।

योग का दर्शन होता है ज्ञान चक्षु से। अनुभव के आधार पर ज्ञान होता है। ज्ञान तोता रटन्त नहीं, लोग उसी को ज्ञानी मानते हैं जिसने पुस्तकों को कण्ठस्थ किया। योग कण्ठस्थ का विषय नहीं, हृदय का है। हृदय, कण्ठ में जो अन्तर है वही तथाकथित ज्ञानी और योगी में। योगी ने पाया है आत्मानन्द तथा कथित ज्ञानी बातों की बाहुल्यता का प्रदर्शन करता ही रह गया। दिल रह गया दिमाग रह गया किसका? जिसने विषयों में रमण करना ही जीवन की सार्थकता समझी। योगी की समझ अनोखी उसने उन्हीं का योग किया जिसने उसे शान्ति दी। यदि श्वास भी शान्ति से मनुष्य न ले सका तो सुख कहाँ, आनन्द कहाँ? यहाँ (संसार में) रहता हुआ मनुष्य वहाँ (परलोक) की बातें सुनकर भयभीत क्यों होता है? योग का आश्रय न लिया तो भयभीत होगा ही, इसमें आश्चर्य क्या? तो योग क्या अभयकर्त्ता है? करके देखो तो जान पाओगे, नये प्राण पाओगे, नयी ज्योति से हृदय जगमगा उठेगा। कहाँ भ्रांति, कहाँ अशान्ति? इनका प्रबल प्रयोग तो योग के अभाव में होता है। भ्रान्ति दूर शान्ति समीप।

मनुष्य को विश्वास क्यों नहीं होता? हो कैसे? वह उस मार्ग को नहीं अपनाता जो उसे शान्ति दे सके। भाव अभाव की यह दुनिया है। भाव की खोज अति अल्प को। अभाव ही अभाव चारों दिशाओं में मनुष्य देखता है और पाता है। खाने का अभाव, रहने का अभाव। जिनको यह अभाव नहीं, उनको वृद्धि का अभाव। धन, जन बढ़ाते चलो और इनकी वृद्धि हो भी गयी तब भी अभाव का पल्ला (दामन) छोड़ता नहीं। योग का नाम उसे अटपटा सा प्रतीत होता है। अन्य व्यक्ति यदि चमत्कारी योगी दिखलायी पड़ा तो उसकी कृपा चाहेगा, लाभ उठाना चाहेगा किन्तु स्वयं योग का आश्रय न लेगा। धनी स्वयं होना चाहता है किन्तु योगी तो अन्य को ही देखना चाहेगा। जहाँ चमत्कारी योगी देखा जाता है, भीड़ लग जाती है। चरण धूलि प्राप्त करने के लिए मनुष्य आतुर हो जाता है किन्तु स्वयं योगी कहाँ होना चाहता है। योगी तुम बनो, लाभ ये व्यक्ति उठायें। अच्छा खेल है। ऐसे योगियों को प्रसिद्धि में सुख मिलता। क्यों वे योगी नहीं कहते कि तुम भी योगी बनो और जीवन का लाभ उठाओ? भक्त मंडली देखकर ऐसे योगी पुलकित हो जाते हैं।

योगी तदाकार हो जाता है। तदाकार शब्द का प्रयोग लोग करते हैं किन्तु होते कितने हैं, यह प्रश्न है जिसका उत्तर सरल नहीं। तत् शब्द संस्कृत भाषा का है जिसका प्रयोग नपुंसक लिंग के लिए किया जाता है। नपुंसक शब्द भी अपमानजनक समझा जाता है किन्तु जब तक मनुष्य ऐसी अवस्था में नहीं आता जहाँ शरीर का भान नहीं तब तक तदाकार रूप बनता ही नहीं। स्त्री, पुरुष का भाव ही मनुष्य को भ्रमित करता है। आत्मा दोनों में किन्तु ऊपरी आकार प्रकार का भाव मनुष्य अब तक मिटा न सका। हस्ती छोड़े तो मस्ती आये। योगी ही इस मस्ती को पाता। ज्ञानी और भक्त अपने इष्ट को स्वयं में या अपने से भिन्न मान उसे प्राप्त करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। योगी उसी में लीन हो जाता है। न अपने को (ब्रह्म) मानता है और न

अपने से भिन्न। योग वह शक्ति देता है, साहस देता है कि हँसते हुए उसी में लीन हो जाता है। यह कार्य प्रदर्शन का नहीं आनन्द का है। योग है वहाँ आनन्द है। आनन्द है वहाँ सच्चिदानन्द है। सत् और असत् का झूला है। इस झूले में झूलता हुआ चला प्राणी अनन्त की ओर जहाँ ओर न छोर।

किसी अवस्था का यथार्थ वर्णन करना आसान नहीं। शब्द में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वह कह सके कि 'वह' ऐसा है जिसने अनुभव किया वह कहाँ व्यक्त कर सका। जहाँ तक इन्द्रियाँ साथ देती हैं वहाँ तक कुछ कह सका किन्तु जहाँ इन्द्रियों की पहुँच नहीं उसका वर्णन किस प्रकार हो सकता है। अनुभव भी उस अवस्था में नहीं होता वह भी होता है इन्द्रियों के समागम से। यह समागम क्या है। सम भाव में आना। सम भाव भी सब कहाँ जान पाते हैं। वहाँ भी योग की आवश्यकता है।

शरीर भी है मन, बुद्धि, चित्त अहंकार भी है। सभी बेकार है यदि योग न हो सका तदाकार से। शरीर भी रत होता है, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के कारण। तदाकार वृत्ति यदि कहा जाये तो यह भी उचित नहीं। अवस्था विशेष की वृत्ति कहना, अवस्था का महत्व कम करना है। किसी भी भाव को कम करना या वृद्धि करना आसान नहीं। लगन चाहिए, तीव्र भावना चाहिए। इन दोनों के अभाव में कहाँ योग, कहाँ शान्ति।

आवागमन से मुक्ति चाहिए। आवागमन जीवित व्यक्ति का प्रत्येक क्षण हो रहा है श्वास प्रश्वास के रूप में किन्तु मनुष्य पहचानता कब है? प्रकृति के खेल प्रकृति जाने तथा मनुष्य अपने को पहचाने तो मानसिक अनेक द्वन्द्वों का निराकरण हो सकता है। एक कहने में लगा दूसरा सुनने में द्वन्द्व मिटे कैसे? योग का प्रयोग न किया या न हुआ तो दोनों ही किया का प्रभाव जीवन को सरल कब बना सका। प्रत्येक क्षण प्रकृति रस प्रदान कर

रही है अन्न, पुष्प, फल, जल के रूप में किन्तु इस रस का उपयोग भी मनुष्य शान्त चित्त होकर कब करता है, चिन्ता, दु:ख, घृणा, ईर्ष्या में ही जला जा रहा है। ऐसे प्राणियों के लिए योग की बातें कहना भैंस के आगे वीण बजाना है। धर्म ग्रन्थों की रचना हुई, उन उच्च उपदेशों से कब मनुष्य ने लाभ उठाया ? पर्दा हटे तो दृश्य देखने को मिले अन्यथा नाट्यशाला में दर्शकों की भीड़ से दर्शक का दम घुटने लगेगा। यह पर्दा है, यह आवरण है विचारों का जिसे मनुष्य हटा नहीं पाता जब तक योग न हो उच्च विचारों का।

निम्नस्तर के विचारों का आक्रमण मन को शान्त नहीं होने देता। महाकटीला वन पथिक को घायल कर देता है। समीप ही योग का पथ है जो सुगम है, आनन्द वर्धक है। कुछ योगियों ने योग का मार्ग भी दिखलाया किन्तु वह भी कुछ अंशों में कंटकाकीर्ण। सहज योग का पथ तो कोई महाकृपालु योगी बतलाता है जहाँ कष्ट नहीं, दु:ख नहीं, रोग नहीं, भोग नहीं, आनन्द ही आनन्द है। यह अनुभूति है जिसे प्राप्त हो गयी वह निहाल हो गया। जीवन सरस, संसार सुखमय।

चमत्कारी योगी की साध है स्वकीर्ति। वह अपने नाम की प्रसिद्धि के लिए मर मिटता है। उसे नाम चाहिए। दूसरी ओर भक्त है वह भी योगी है। उसे भी प्राप्त हुई है कीर्ति किन्तु वह उसका इच्छुक नहीं। वह अपने नाम का भूखा नहीं। वह चाहता है अपने इष्ट का नाम जिसकी कृपा ने उसे यह जीवन दिया जो दिव्य है। परम सुखकारी उसके कार्य होते हैं जिसने भक्ति में अपना जीवन अर्पण किया। भूमिष्ट बालक अपने साथ एक प्यास लेकर आया है जिसे तृष्णा भी कहा जा सकता है। जैसी जिसकी तृष्णा होती है वैसा ही उसका जीवन बन जाता है।

भक्त प्रेम योगी, चमत्कारी योगी, सिद्धि योगी। सिद्धि एक खेल, प्रेम एक रस, जिसके अभाव में जीवन एक भार। भार उठाते-उठाते मनुष्य

व्याकुल - यह व्याकुलता उसे किसने दी? उसके विचारों ने। ये विचार आये कहाँ से? विचारों का बना हुआ है संसार। यह संसार आया कहाँ से? यह गया कहाँ था? प्राणी आते रहे, जाते रहे, संसार वहीं का वहीं। क्या सतयुग भी कभी था? वह आज भी है, सत्पुरुषों के लिए। मनुष्य शान्त क्यों नहीं हो पाता? उसे कुछ ऐसा प्राप्त न हुआ जो उसे शान्ति दे। शान्ति दे सकता है योग यदि योग को पहचाने, उसी को प्रधान मानें। योग को मनुष्य क्यों नहीं पहचानता? मनुष्य जब तक अपने को ही नहीं जानता वह योग को क्या पहचानेगा?

योग केवल कोई क्रिया विशेष नहीं, यह तो हो रहा है किन्तु उसकी ओर लक्ष्य नहीं। सूर्य की किरणों का योग पृथ्वी के कण-कण से हो रहा है। कण-कण प्रकाश पाकर प्रकाश में आ रहे हैं। चन्द्र की शीतल किरणों ने कणों को शीतल किया यह भी तो योग है। न सूर्य की ओर ध्यान और न चन्द्र की ओर वह कैसे प्रकाशमय होगा, कैसे शीतल। प्रकाश शरीर पर, मन पर कहाँ? शरीर का प्रकाश से योग हो रहा है, मन का भी तो होना चाहिए। बीमार की दवा न हो तो बीमार कैसे स्वस्थ होगा? बीमारी तो मन की है, तन की विशेष नहीं। तन की बीमारी ठीक होगी नहीं तो यह तन न रहेगा किन्तु मन की बीमारी से मुक्त होना सरल नहीं। तन गिरा, मन कहाँ मरा? मन कभी मरता नहीं, लीन हो जाता है इसे मरना कैसे कहा जाये। योग ही मन की दवा है। यदि दवा न हुई तो मन सदा रोगी रहेगा। रोगी मन भोगी मन बन जाता है। भोगी मन सदा सताता रहता है। यह मन, धन क्यों खोजता है, तन क्यों खोजता है, अपने भुलावे के लिए। शान्ति कहाँ? सुख का अनुभव नहीं करता चिन्ता और दु:ख को अपनाता है। परिणाम संसार में आना जाना कोई अर्थ नहीं रखता। परोपकार न करे, न सही सुख से तो रहे किन्तु सुख से कहाँ रह पाता है? जहाँ सुख की अनुभूति नहीं, वहाँ दु:ख ही प्रधान।

योग दु:ख दूर करता, सुख ही नहीं देता आनन्द से साक्षात्कार कराता। योग का नाम जिन व्यक्तियों को निरर्थक सा लगता है वे जीवन की उपयोगिता क्या जानें? जीवन की अवधि केवल शरीर की रक्षा के लिए ही बिता दी जाय तो जीवन कुछ अर्थ नहीं रखता। कौन कहता है कि सांसारिक सभी कार्यों से विरत होकर केवल योगाभ्यासी बनो। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम की आवश्यकता है उसी प्रकार मन को सुदृढ़ तथा सबल बनाने के लिए योग का भी स्थान है। उपेक्षा मनुष्य को शान्ति नहीं दे सकती। जिन लोगों ने योग का अभ्यास किया है उनका जीवन कुछ और ही होता है। योग समय को सार्थक बनाता, मन को शान्ति देता, जीवन के रहस्य का उद्‌घाटन करता, कर्म की पद्धति बताता, निरर्थक विचारों के समूह को दूर करता, प्रभु से मिलाता, सरल सरस जीवन यापन के लिए प्रेरणा देता और देता है कुछ ऐसा भाव कि जिसके अभाव में जीवन सरस नहीं हो पाता।

योग भी भिन्न-भिन्न होते हैं। भिन्नता क्रिया में है, योग में नहीं। रुचि तथा संस्कार के अनुसार योगाभ्यासी, योग को अपनाता है। शान्तिप्रद योग को साधारण जन योगी ही नहीं मानते। उन्हें तो ऐसे योगियों की आवश्यकता है जिनसे उन्हें लाभ हो। स्वयं का स्वयं से योग को साधारण जन योग नहीं मानते। स्थूल और सूक्ष्म दो तत्व हैं। स्थूल दृष्टिगोचर होता है और सूक्ष्म तो अनुभव के आधार पर ही समझा जा सकता है। स्थूल को देखकर सूक्ष्म ने क्या अनुभव किया यह वाणी के द्वारा व्यक्त मनुष्य करता है किन्तु क्या वह यथार्थ रूप से कर पाता है? शायद नहीं। सृष्टिकर्त्ता ने स्थूल के बजाय सूक्ष्म को ही प्रधानता दी है और इस सूक्ष्म शक्ति की प्राप्ति के लिये योग की ओर महर्षियों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

अमर वाणी सूक्ष्म तत्व से पूरित है। वाणी अमर उनके लिए जिन्होंने सूक्ष्म भाव समझा उस वाणी का। वस्तु का रूप, रंग, गन्ध ही प्रधान नहीं वह

तत्व प्रधान है जिसने उसे इन गुणों से सम्पन्न किया। सूक्ष्म से जब स्थूल रूप ग्रहण किया कि बात ही बदल गयी। वह सूक्ष्म तत्व जो उसका प्राण था उसका ही पता नहीं। आत्म भाव तो महान है किन्तु जो प्रकृति के साधारण गुणों से भी अवगत नहीं वह आत्म भाव को क्या जाने? उस आत्म तत्व के बोध के लिए योग प्रधान है।

योगी होना जीवन की सार्थकता भी है और सौभाग्य भी। अन्यथा प्राणी यों ही आता है और यों ही जाता है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन में जीवन की उपादेयता कहाँ? खाना, पीना तो लगा ही रहा सभी योनियों में फिर मनुष्य जीवन निरर्थक ही रहा।

भाव की परिभाषा सरल नहीं। इसकी पहिचान की भी जानकारी अति अल्प को। आँखों में आँसू देख और उसी को भाव कहने लगे यहाँ भी भ्रम है। ये प्रेम के आँसू हैं या अभाव के यह भी तो पहचानना होगा। मनुष्य को आज भाव की आवश्यकता कहाँ? अभाव ही उसका स्वभाव हो रहा है। जीवन की आवश्यकीय वस्तुओं का अभाव ही उसके लिए चिन्तनीय विषय बना हुआ है। वहाँ भाव की बातें निरर्थक सी प्रतीत होती है। भाव के बिना शांति कहाँ? अशांत प्राणी का परिश्रम भी उसे शान्त नहीं कर पाता। अशांत क्यों है? जहाँ उच्च विचार नहीं, पर उपकार न सही, स्व उपकार भी नहीं कर पाता वहाँ अशांत तो प्राणी होगा ही।

भाव पुस्तकों का विषय नहीं, अनुभूति चाहता है। सम्मुख कोई इष्ट हो! इष्ट के प्रति तीव्र अनुराग हो। अनुरागमय जीवन हो। जीवन का प्रत्येक क्षण, क्षय में न समा जाये - अक्षय से ही योग हो तब कहीं भाव का जागरण हो। प्रकृति जाग्रत मनुष्य कहाँ जाग्रत? वह तो रत रहता है अभाव में, वहाँ कहाँ जागरण? रण है विचारों का उसी में उलझा रहता है। जाग्रत, स्वप्न,

सुसुप्ति इन तीनों में ही चक्कर काटता रहता है - तुरिया कहाँ? भाव तो तुरिया से भी अनोखा है। शून्य गगन, शून्य मन में नव ज्योति प्रतिभासित होती है जब भाव का जागरण होता है। सोई हुई वृत्तियाँ अंगड़ाई लेकर जाग्रत हो जाती हैं। अलौकिक समय होता है। न दिन का पता, न रात का, न पुनः प्रभात का। यदि कुछ पता है तो अपने इष्ट का। भाव की प्रभा फैली। प्राकृतिक प्रभा या प्रभात का कहीं पता नहीं।

प्रकृति पर विजय पाना सरल नहीं। अनेक ऋषि मुनि पराजित हो गये इस प्रकृति के खेल में। बुद्धि बल पर उनका प्रयोग असफल ही रहा। मन को शमन करना आसान नहीं। अधिकतर साधक तन का दमन करने में लगे रहे तथा अब भी दमन करने वाले ही प्रशंसनीय माने जाते हैं। प्रचलित धर्मों में आज भी तन के दमन को ही प्रधानता दी जाती है। उनका (धर्मावलम्बियों) कहना है कि यदि तन का दमन न किया जाये तो मन का शमन अति कठिन। मन में उमंग नहीं तो आचरण में परिवर्तन संभव नहीं।

मन को मारा नहीं जाता। जहाँ बुद्धि बल पर साधना की जाती है वहाँ साठ हजार वर्ष का तप भी भंग होता है। मन माने, साधना सरल। मन ही तो बाधक था। स्थूल जगत में दमन ही प्रधान। लोग देखेंगे, प्रशंसा करेंगे। मन को संतोष नहीं अभिमान होगा। इसे साधना कहा जाये या अभिमान वृद्धि। कबीर ने कहा - "मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा"। मन पर रंग होता, रोम रोम तरंगित होता, किन्तु जगत प्रदर्शन न होता। यथार्थता कटु प्रतीत होती है। दर्शन है चित्रकारी नहीं। जहाँ चित्रकारी है वहाँ प्रदर्शन है। प्रदर्शन ख्याति चाहता है और दर्शन तो मस्त बना देता है मन को। आँखों से दर्शन किया कि मन से? यदि मन से तो मन पर अंकित होगी वह मूर्ति जिसका दर्शन कर मन प्रसन्न होता है।

अनुभव ने कुछ कहा है, मन ने कुछ माना है तो कुछ कहने लिखने की प्रवृत्ति हुई। भाव अदृश्य की स्मृति जाग्रत हुई कुछ हृदय में, मधु स्पर्श ने एक अलौकिक भावना स्वत: ही विकसित कर दी। अब भाव की सुप्त और लुप्त गंगा पुन: प्रवाहित होने लगी। यह भाव है जिसका प्रभाव हृदय पर अमिट होता है। क्षणिक आवेग एक चमक है, चिर आलोक नहीं। सूर्य, चन्द्र का प्रकाश स्थूल जगत के लिए आवश्यक है किन्तु सूक्ष्म जगत में तो भाव ही वह प्रकाश है जहाँ निरर्थक विचारों का अन्धकार स्वत: ही विदा हो जाता है। कल्पना क्यों, यथार्थता का बोध करवाता है भाव। भाव ने ज्ञानी, अज्ञानियों को परमानन्द की अनुभूति करवाई। आज भी भाव के उपासक जब कभी भाव में लीन हो पाते हैं अवस्था ही कुछ ऐसी हो जाती है कि जिसका वर्णन आज तक कोई न कर सका। कुछ बातें अवश्य कहते हैं किन्तु यह तो आभास मात्र है। यथार्थ तो अनुभूति है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

जैसा मनुष्य का मानसिक स्तर होता है वैसा ही मनुष्य अनुभव कर पाता है। जहाँ वार्ता में ही पुण्य समझा जाता हो वहाँ अवस्था की आवश्यकता कहाँ? आवश्यकता ही तो अनुसंधान के लिए प्रेरणा देती है। केवल प्रेरणा ही नहीं देती बल्कि बेचैन सा बना देती है। भाव में आविष्कार नहीं होता, अनुसंधान होता है। व्याप्त को प्राप्त करना है। प्राप्त करने की क्रिया को साधना कहते हैं। साधक मन। मन लीन होने लगा साधना होने लगी। साध्य, भाव के द्वारा प्राप्त।

यह मिट्टी क्या नहीं उगलती? चाहिए साधक, पहिचान। पहिचानना भूला, सब कुछ भूला। भूल की पूर्ति स्थूल वस्तुओं से करना चाहता है मनुष्य - सो कैसे हो? स्थूल जब तक स्थूल है प्राप्ति असंभव। सूक्ष्म में रूप नहीं - भाव है। कोयला है भाप कहाँ? भाप है अब कोयला कहाँ? रूप नाशवान, स्वरूप चिरस्थायी। स्वरूप दिखलायी नहीं देता अत: रूप के लिए

ही मनुष्य छटपटाता रहता है। क्या काला क्या गोरा चर्म किन्तु मर्म तो चर्म नहीं। मर्म में धर्म निहित है। मानव कृत धर्म नीति और बुद्धि की उपज है। यथार्थ धर्म तो प्राणी में रमा हुआ है - जमा हुआ नहीं। जमा हुआ है संस्कार। संस्कार सूक्ष्म जब स्थूल रूप धारण करते हैं तो मनुष्य समझ नहीं पाता कि भले बुरे विचार आये कहाँ से? विराट विश्व अनेक रूप, अनेक गति विधि, किस कार्य की, किस शब्द की अमूर्त मूर्ति संस्कार के रूप में जम गयी मन में जिसे भुलाया नहीं जा सकता। उन संस्कारों के इशारों पर तन मन नाच रहा है ताल, बेताल और शान्ति का नाम नहीं। भाव कहाँ? ये संस्कार तो अभाव के ही थे और हैं। विचारों के कण जमते चले गये और ऐसे जमते चले गये कि अब उनसे छुटकारा पाना आसान नहीं। किन्तु हताश और निराश होना तो जीवन नहीं।

परिवर्तन देखने सुनने में आया है और स्वयं का जीवन भी साक्षी है परिवर्तन का। एक दिशा जल बरसाती और विपरीत दिशा वर्षा बन्द का कारण बनती है। एक दिशा शीत का कारण बनती और विपरीत ग्रीष्म का। परिवर्तन स्थूल प्रकृति में देखने को मिलता है तो क्या सूक्ष्म प्रकृति में परिवर्तन सम्भव नहीं? सम्मुख और विमुख क्या है? यही अनुकूल, प्रतिकूल का काम। संस्कारों का विलाप वृथा - मानव जब आलाप का शुभ अवसर पाता है सन्त का तो परिवर्तन ही परिवर्तन होता चला जाता है। संस्कार जो अब तक हींग की तरह चारों ओर गन्ध फैलाते थे, कपूर की तरह उड़ जाते हैं सुगन्ध प्रसारित करते हुए जब मनुष्य भावमय हो जाता है। प्रार्थना मार्ग सरल करती और भाव तो रम जाता है रोम-रोम में फिर तो आनन्द ही आनन्द है।

सुख के लिए मनुष्य बेचैन वह आनन्द शब्द मात्र सुनता आया है - आनन्द की अनुभूति तो किसी भाग्यशाली को ही हो पाती है। आनन्द

वाला डूब जाता है आनन्द सागर में। बात नहीं - साक्षात्कार। किसका? किससे? यह लिखने का विषय नहीं। कुछ लोगों ने कहा - "आपै आप समाय"। यह कैसी अवस्था है? कौन बताये किसे बताये? बताये उस व्यक्ति को जो इन बातों को निरर्थक समझता है? शांत रह प्राणी, न बताना उनको जिनको मेरी बातें अच्छी न लगती हों (कथाकार - भगवान श्रीकृष्ण) प्रार्थी की प्रार्थना सुनी जाती है। अर्थार्थी की भी सुनी गयी किन्तु जो तर्क-कुतर्क में लगा है वह लगा रहेगा उसकी बातें भ्रम उत्पादन करती है, भ्रम निवारण नहीं।

मनुष्य इतना भ्रमित क्यों होता है? अनजान पथ, अनजान बातें। धर्म भी अनेक किसे अपनाये, किसका त्याग करे, अतः भ्रम होना स्वाभाविक है। कथाओं के अनुसार देवी देवताओं को भी भ्रम हुआ फिर मनुष्य तो मनुष्य ही है। दुर्बल स्वभाव लेकर चला आ रहा है। दृढ़ता होती विश्वास की तो विश्व में आना ही न होता। यदि होता भी तो उसका कार्य भ्रमित न होता। निश्चित कर्म होता और निश्चिन्त होकर इस भव बन में भ्रमण करता। अन्य जनों के लिए मार्ग प्रदर्शक होता। भव बन का दर्शक होता, भ्रमित न होता।

जीवन की सारहीनता देख कितने ही व्यक्ति व्याकुल हो उठे और उन्होंने त्याग को अपनाना ही श्रेयष्कर समझा। किन्तु त्याग ने कितने लोगों को शांति दी जब तक कि स्वतः त्याग नहीं हुआ। वासना का कार्य ही ऐसा है कि वह मनुष्य को चैन से रहने नहीं देती। बुद्धि बल पर इसे (वासना को) दबा भी दिया गया तो यह क्या दबी? त्याग, तपस्या, ध्यान, धारणा वाले जब यह समझ बैठे कि वे वासना से मुक्त हो गये, वासना ने वह खेल दिखलाया कि वे देखते ही रह गये। भगवान शंकर को भी क्षमा न किया इस वासना ने। महात्मा गौतम ने भी वासना के नृत्य देखे। भाव ही से परास्त हुई वासना क्योंकि न वासना को ललकारा और न त्याग की महिमा गाई।

भावुक होना अन्य अवस्था है और भाव कुछ और ही है। न त्याग है और न भोग। न भव है और न अभाव। भाव में कुछ ऐसी स्थिति बन जाती है कि अपने तन, मन, धन की सुध, बुध नहीं रहती। लय हो जाता है प्राण प्रियतम में। जहाँ तम नहीं प्रियतम है, जहाँ अभाव नहीं भाव है, जहाँ नहीं भव, नहीं शव, नहीं रोष, नहीं आक्रोश, केवल भाव, केवल भाव।

यह भाव कैसे उदय होता है इसका भी निश्चित पथ नहीं। प्रभु के चरणार्विन्द के दर्शन ने (गया में) गौरांग महाप्रभु को भाव विभोर कर दिया। लोग तो प्रभु की प्रतिमा देखते हैं किन्तु भाव कहाँ वे अपने अभाव में ही दर्शन करते हैं अत: भाव के दर्शन कहाँ? प्रतिमा को प्रतिमा न समझ माँ सम्बोधन ही नहीं किया, माँ समझा। जगत जननी समझने वाला भाव उपासक भी इस धरा धाम पर आया तथा भाव की गंगा प्रवाहित कर गया बंगाल में। अन्य जन भी हुए जिन्होंने "आ प्यारी गंगा आ" कह कर कलेवर समर्पित कर दिया गंगा को। प्यार करने वाले जब आये उन्होंने चर्म को प्यार नहीं किया, मर्म को प्यार कर इहलीला संवरण की। वरण करता है व्यक्ति अन्य को शरीर के रूप में, भाव में कहाँ? जहाँ भाव है, वहाँ शरीर कहाँ। वहाँ तो प्यार ही प्यार है - यार ही यार है (आराध्य देव)।

भाव की बातें कहना सरल हो सकता है - भाव आना सरल नहीं। पिघलता मक्खन अति अल्प उष्णता पाकर किन्तु पिघलना नहीं, विचित्र अवस्था बन जाती है भाव में। भाव में वाक्य, कुवाक्य की ओर ध्यान कहाँ? कहनेवाले चल बसे, भाव वाला अमर हो गया। अब तक का इतिहास यही बतलाता है। कोई पूजा करे या निन्दा, भाव वाला तो मस्त रहता है भाव में। जब जब भाव को भाषा में व्यक्त करने का प्रयास किया, सफलता कहाँ मिली? ध्यान को ही उपासक न बतला सका फिर भाव तो ध्यान से भी अनोखा है। क्षणिक भाव ही मनुष्य को गद्गद् कर देता है फिर सदा भाव में रहने वाले व्यक्ति के आनन्द को बतला पाना सम्भव नहीं।

भूमि पर अनेक पुष्प विकसित होते हैं सौन्दर्य प्रसारित करते हुए अथच कुछ मनमोहक भी, किन्तु सुगंध कहाँ? ऐसे ही मनुष्य के विचार भी हैं। सुगंध फैलाने वाले विचार तो अति अल्प दृष्टिगत होते हैं अधिक मनमोहक विचारों ने ही मनुष्य को मोह ग्रसित कर रखा है। दुःख सुख की वायु बहती रहती है। दुःख ही अधिक सुख का पता ही नहीं चलता कब आता है, कब जाता है। चिन्ताकुल मन सुख का अनुभव ही करने नहीं देता। आनन्द की तो बात ही बात है। इसका अनुभव भाव में स्वतः होता है।

बसन्त ऋतु ने नवीन पल्लव दिये वृक्षों को, भाव ने अभाव रूपी पतझड़ का अन्त कर आनन्दमय सृष्टि की। इस स्थूल सृष्टि में जब भाव सृष्टि बनती है तो स्थूल जगत, स्थूल वस्तुओं में ही लिप्त रहता और भाव जगत को क्या कहा जाये, अपूर्व अवस्था बना देता है। पराग मंडित है कली किन्तु विकास में पुष्पाकार हो जाती है तभी सुगंध का पता लगता है। खिले तो मिले भाव, भगवान। खिलने के पूर्व ही मुरझाई तो क्यों आई, क्यों मुरझाई? प्रेमाश्रु के अभाव ने हृदय रूपी कली का विकास न होने दिया। जल ही नहीं तो कली खिलेगी कैसे? भाव ही नहीं तो आनन्द मिलेगा कैसे? भाव ने खिला दिया हृदय को, मिला दिया प्रियतम से। शील संकोच कैसा? जहाँ प्रेम वहाँ मान, लज्जा, भय रहेंगे कैसे? यदि ये तीन रहते हैं तो प्रेम कहाँ? जगत में लज्जा का व्यवहार ही प्रधान। प्रेम तो "छोड़ दई कुल की कान" चाहता है। संकोच है तो झुलसते जाओ दुनिया के व्यवहार में। संकोच कैसा, झिझक कैसी? "मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।" किनारे बैठे ही बैठे तो जिन्दगी बीती फिर स्नान का सुख भी न पा सका। डूबना नहीं तैरना है प्रेम महा समुद्र में। फिर न उद्धार की पुकार, और न उबार की चिल्लाहट। यह तो दुनियादार मनुष्यों के भक्ति के चोंचले हैं।

दिल खोलकर प्यार कर उस अदृश्य से कि वह दृश्य हो जाये हृदय मंदिर में। बात कर उस अदृश्य शक्ति से कि वार्तालाप का आनन्द आये। ये

दुनिया में धक्के खाने वाले हैं इनसे बात कर प्यास न बुझेगी। प्रेमी बात करता है अपने प्यारे की और ये अपना ही दुखडा रोते रहते हैं अभाव का। क्यों सुनाता है इन्हें भाव की बात ये अभाव में ही पैदा हुए हैं और अभाव में ही मर जायेंगे। माता, पिता, सन्तति का अभाव रखते आये और इनके प्रियजन अभाव के ही गीत गाते चल बसे। चले तो बसे कहाँ? बस में होते आये अभाव के। बसना कहाँ, यहाँ तो तरसना है स्थूल वस्तुओं के लिए। तरसना है, न तर होना है और न सना है प्रेम में फिर भला शांति कहाँ, भक्ति कहाँ? यदि प्रार्थना भी करते हैं ये दुनियादार व्यक्ति वहाँ भी अभाव की पूर्ति के ही गीत गाते हैं।

उलझन मन की नहीं - मन को रस न मिला अदृश्य का, मन उलझ पड़ा, अपने से ही। सोचता है, विचार भी कर पाता है बुद्धि के बल पर किन्तु रस कहाँ? सांसारिक रस तो रस नहीं क्योंकि यह तृप्ति नहीं देता, व्याकुल ही बनाता रहता है मन को। मृग तृष्णा का खेल होता रहता है मन के साथ। इस वस्तु में रस खोजा, उस वस्तु में किन्तु भ्रम ही होता गया रस न मिला। बुद्धिमान लोग मन को मारने का उपदेश देते आये। मन बेचैन, न उसे रस मिला और न सान्त्वना देने वाला ही मिला। मिले ऐसे जिन्होंने कहा मारो इस साले मन को, यह बड़ा हरामी है। मन को समझाना दूर रहा केवल मारो-मारो की आवाज चारों दिशाओं से आने लगी। इस प्यासे को (मन को) रस पिलाओ कि यह मुक्त हो जाये झंझटों से। त्याग करो, किसका, दुनिया का। कहाँ जाओगे इसका त्याग कर? निरर्थक बात न करो। इस अनेक जन्म के प्यासे मन को रस दो।

रस देगा भाव, जिसे तुम (दुनिया वाले) उन्माद, पागलपन कहते हो। पागल नहीं है भाव वाला। कुछ पाया है, कुछ नहीं, सब कुछ पाया है भाव वाले ने। शायद इसीलिए तुम उसे पागल कहते हो। तुम स्थूल में खोजते ही रहे रस को और उसने पा लिया सूक्ष्म भाव में। अब उसकी दुनिया ही दूसरी

हो गयी जहाँ तुम्हारी पहुँच नहीं - मानव कृत धर्म की पहुँच नहीं। "ईश्वर को भजो - दुनिया को तजो" यही सुनते आये। भाव वालों की बातें सुनकर भी पहिचान न पाये भाव को, रस को। वासना की बातें पढ़ते-पढ़ते मन उत्तेजित हो जाता है वासना के लिए, शारीरिक भोग के लिए, किन्तु क्या भाव की बातें पढ़कर या सुनकर भाव जाग्रत हुआ? अति गंभीर गुफा में सोया हुआ है भाव उसे जगाना किसी महापुरुष के द्वारा ही सम्भव हो सकता है अन्यथा सरल नहीं। अश्रुहीन रुदन करता है मनुष्य किन्तु न भक्ति की और न भाव की ओर ध्यान देता है। जीवन की सुन्दर घड़ियाँ चिन्ता में बीती, जीवन अभिशाप हो गया, वरदान कहाँ रहा? देवता से वरदान मांगता है धन, जन का, मानसिक शांति का नहीं। भाव की बातें सुनना भी यदि पसन्द न करे तो मानसिक शांति कहाँ?

भाव की भूमिका न आकाश और न पाताल। एक शब्द सुनकर भी मनुष्य भाव में आ सकता है - पूर्ण ग्रंथ पढ़कर या सुनकर भी नहीं। सुनता है बुद्धि से, मन से - प्राणों की व्याकुलता से नहीं। न घर छोड़ना पड़ता है और न मन बुद्धि ही सहायक होते हैं पूर्ण रूप से भाव के लिए। प्रश्न हो सकता है तब भाव का आगमन कैसे होगा? जब कभी प्रेम की उत्ताल तरंगें प्राणों को स्पर्श करती है भाव का केवल उदय ही नहीं होता - तरंगे मारने लगता है भाव, प्राणी भूल जाता है नाम, ग्राम अथच रोम-रोम पुलकित हो जाता है। जिस रोमावली से पसीने की बूंदें निकलती है वहाँ भाव के प्रभाव से शीतलता आ जाती है। शरीर की गन्दगी सुगंध में बदल जाती है तथा चारों ओर आनन्द की वर्षा होने लगती है।

बातें शायद अविश्वसनीय प्रतीत होती हों किन्तु यथार्थता तो अनुभवगम्य है। पुजारी होश में है - पूजा कहाँ? तो क्या बदहोशी में पूजा होती है? बदहोशी में नहीं, किन्तु पूजा होश में रहने नहीं देती। माला अर्पण

करनेवाला भाव सम्पन्न व्यक्ति इष्ट की माला अपने ही धारण कर लेता है, क्या यह दुनिया की दृष्टि में पागलपन या बदहोशी नहीं ? भाव होता ही ऐसा है जहाँ इष्ट और उपासक एकाकार हो जाते हैं। जब तक होश में रहकर पूजा करता है वह नाम मात्र पूजा है। शरीर तथा मन की अहंता को झुकाने के लिए सम्मुख इष्ट रखना ही होगा। क्रमशः भावना तीव्र होती गयी और सम्पूर्ण वृत्तियाँ इष्ट में लीन हो गयी। स्थूल ने ही व्यक्ति को भ्रमित कर रखा है - सूक्ष्म भावना हुई दुनिया ही बदल गयी।

भाव एक जन्म की साधना से उदित नहीं होता। अनेक जन्मों की साधना ही साध्य तक पहुंचा देती है। "जनम जनम तब रूप निहारहूँ तबहूँ न तृप्ति भयेल" कवि के उद्‌गार हैं। भावुक है - भाव मग्न नहीं। भाव मग्न होता तो समा जाता उस अरूपी के रूप सागर में और तरंगों का आनन्द लेता। जो कुछ भी हो - भावुक हृदय तो है।

रूप की पिपासा अति व्याकुल करती आयी है। रूप तो दरवाजा है - भीतर क्या है यह भी तो देखना होगा। स्थूल रूप से देखें तो चिदानन्द का निवास स्थान है। आत्मदेव चाहता है कि उसका दरवाजा कोई खटखटाये तथा भीतर प्रवेश करे - दर्शन के लिए। मनुष्य तो दरवाजे पर (रूप पर) मोहित हो उसी की उपासना करने लगा। लगा भी ऐसा लगा कि युग के युग ही नहीं - जन्म के जन्म बीत गये। रूप पिपासा न शांत हुई।

अरूपी का रूप कैसा होगा ? उसमें सब रूप, उसमें कोई रूप नहीं। आकाश की परिछाई भूमि पर थी, जल पर भी। जल पर प्रतिभासित होती है पृथ्वी पर नहीं। शीशे पर चमक आकाश की मिट्टी पर नहीं। शीशा आया कहाँ से ? मिट्टी से। वैसे ही इस भूमि पर ऐसे भी व्यक्ति है जिनके हृदय में प्रकाश है उस अदृश्य का। अन्य लोग तो मिट्टी पर खेलते-खेलते मिट्टी में ही समा

जाते हैं। भाव वाले भाव की गंगा में गोता लगाते, आनन्द पाते। विश्वास नहीं होता ऐसी बातें सुनकर। विश्वास खो बैठा है प्राणी इसीलिए विश्वास नहीं होता। विश्वास दिलाया नहीं जाता, हो जाता है तभी मनुष्य सुख की नींद सो सकता है। चैन नहीं दिन रात। क्यों? विश्वास नहीं इष्ट पर, क्योंकि इष्ट अदृश्य है। यदि है तो कभी न कभी दृश्य भी होगा, प्रतीक्षा करो।

प्रेम की गति अति गंभीर, साक्षी कौन? प्रेम में भी साक्षी की आवश्यकता है तो वह प्रेम नहीं, प्रेम के नाम पर वासना ही होगी। प्रेम का साक्षी प्रेम ही है कोई व्यक्ति नहीं। प्रेम व्यक्ति के लिए नहीं, अव्यक्त प्रभु के लिए है। पूजा पाठ का क्रम कुछ और है और प्रेम का क्रम नहीं विक्रम है उसका कि संसार में रहते हुए भी इस संसार में नहीं रहता जिसमें अन्य जन कीट पतंग की तरह पैदा होते तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं। संसार से जाते समय सांसारिक सम्बन्धियों तथा वस्तुओं के लिए विलाप करते हुए मरते हैं। मरते समय भी चैन नहीं। चैन हो कैसे? मनुष्य ने इस संसार को ही अपना समझा तथा अन्य जनों को शरीर छोड़ते हुए देख कर भी अपना ढंग न बदला। प्रेम और भाव ऐसे लोगों के लिए कहाँ? प्रेम में मस्त रहनेवाले व्यक्ति ही कितने हैं? भाव को समझ पाना ही कठिन फिर भाव में रहना तो और भी दुर्लभ है।

प्रेम और भाव की तुलना नहीं की जा सकती है। भाव निरन्तर नव चेतनादायक है। प्रेम उत्कट प्रेम ही भाव का कारण बनता है। लोग आनन्द की बातें कहते हैं - प्रथम शांति हो, पुनः प्रेम हो, फिर कहीं आनन्द। शब्दों का अधिक प्रयोग कहीं महत्व कम कर देता है और कहीं प्रगाढ़ चिन्तन बन जाता है। बार-बार शब्द हृदय से टकराते हैं और टकराते-टकराते ध्वनि पैदा कर देते हैं, शब्द, वही शब्द अजपा जप के रूप में बदल जाते हैं।

कुछ ज्ञानी प्राणों की अनुभूति को भी अनित्य कह कर उसे (अनुभूति को) महत्त्व नहीं देते। ज्ञानी देगा या लेगा यह ज्ञानी के ज्ञान पर निर्भर करता है बुद्धि का ज्ञान देगा क्या, विश्लेषण में लगेगा। कहेगा यह भी सत्य नहीं, वह भी सत्य नहीं इस छानबीन में कितने जन्म बीत जायेंगे यह कहना कठिन है। "पिपीलिका समुद्र की थाह लेने चली" यह उक्ति बुद्धिज्ञानियों के लिए उपयुक्त है किन्तु भाव वाला तो नमक की पुतली की तरह आनन्द सागर में ही लीन हो जायेगा, उसके लिए छानबीन नहीं खिंचाव है महान का, उसका वियोग सहन नहीं कर पाता भाव वाला। शरीर जाये या रहे उसे तो अपने प्रियतम की डगरिया में ही जीवन बिताना है। कोई अति पिपासु आया भाव का तो उसकी प्यास बुझाने के लिए वाणी का प्रयोग करते हैं अन्यथा शांत रह कर भावमय जीवन प्रभु कृपा से बिताते हैं। अधिक वार्तालाप वाणी का दुरुपयोग। उपयोगी वाणी कम ही होती है। समझाना भी अधिक नहीं। वाणी में सार होगा, उपयुक्त पात्र होगा, तो अधिक वाणी का प्रयोग क्यों होगा? यदि होता है तो कहीं कमी है, श्रोता या वक्ता में। भाव वाला तो अपने दिल की बात कहता है, समझाना आदि नहीं।

सत्य बोलना, इस युग में कठिन है, सत्य पथ पर चलना तो उससे भी कठिन। सत्य की मान्यता ही सबको सरल कर देगी, चाहिए दृढ़ विश्वास। उच्च आदर्श यदि मौखिक हो तो शांति कहाँ? कहना आसान, करना कठिन क्यों? करने का परिणाम होता है विलम्ब से या अविलम्ब। "राम नाम सत्य है" यह कहने वाले सुने जाते हैं शव के साथ किन्तु यह कहना भी शव यात्रा तक ही सीमित है, इसके पश्चात् कहाँ? दुनिया को बातों में रिझाने वाले लोगों की आज भी कमी नहीं।

बातें धर्म की, बातें कर्म की। कर्म बन्धन से युक्त करता तथा मुक्त करता और धर्म का बन्धन तो अति विषम है। यह धर्म ही है जो रक्षा करता है

और यह भी धर्म ही है जो हत्या करता है (विपक्षी धर्मावलम्बी की)। धर्म न रक्षा करता है और न हत्या। यह मानव धर्म है जो मनुष्य को देव कम दानव अधिक बनाता है। कर्म की गति है और धर्म की भी। जहाँ शान्ति है वहाँ कर्म और धर्म दोनों ही उत्तम हैं किन्तु जब ये दोनों अशांति के कारण बनते हैं तब कर्म कर्म नहीं रहता और न धर्म, धर्म। धर्म के प्रवर्तकों ने भविष्य की ओर शायद ही ध्यान दिया हो। यह प्रकृति है जो परिवर्तन शील है, इसने कितने ही मानव कृत धर्मों को विलीन कर दिया तथा कुछ नवीन धर्मों को जन्म दिया - मानव कृत परमारथ नाहीं। तुलसीदास ने मायाकृत कहा। माया और मिथ्या दो शब्द हैं जिनको समझना अति कठिन भी अति सरल भी। मनुष्य की बुद्धि जहाँ भ्रमित होती है तथा सम्मोहित उसे माया कहना आरम्भ किया तथा जो नाशवान है वह मिथ्या। मिथ्या का अर्थ केवल झूठा समझने वाले और समझाने वाले ही अधिक आये अतः भ्रम अधिक हुआ। सम्मुख संसार ही झूठा है यह कहना कहाँ तक सत्य है? नाशवान है यह संसार अतः इसी में लीन रहना नाश ही करना है जीवन काल।

भाव में माया या मिथ्या दोनों का ही स्थान नहीं। भाव शब्द का प्रयोग वस्तुओं के दर के लिए किया जा रहा है। क्या यही भाव गौरांग महाप्रभु को पागल बना कर नाम वितरण करवाता रहा? शब्द का कैसा दुरुपयोग है। भाव ही भगवान है। भाव दिखलाना, भाव बढ़ाना और घटाना क्या इन्हें भाव कहा जाये? एक शब्द है भावुक, इसे समझना भी सरल नहीं। साधारण व्यक्तियों से भावुक, इसे समझना भी सरल नहीं। साधारण व्यक्तियों से भावुक भिन्न होता है किन्तु भाव वाला व्यक्ति युगों में कहीं एक देखने, सुनने को मिलता है।

योग अनेक (भक्ति योग, ज्ञान योग, राज योग आदि) किन्तु भाव योग परिपूर्ण है अपने में ही। न जाने किस किस का ज्ञान करना है और उसी प्रकार भक्ति भी किन्तु भाव योग में ज्ञान, भक्ति की प्रधानता नहीं। भाव योग

में न शरीर का ज्ञान रहता है और न शास्त्र या विद्या का। प्रश्न हो सकता है फिर क्या रहता है? वही रहता है जिसमें भाव वाला लीन है। वह कौन? इष्ट या इष्ट का भाव या केवल भाव? प्रश्न तो अनेक है और हो सकते हैं। प्रश्नों का उत्तर यदि शब्द तक ही सीमित है तो क्रिया कहाँ? क्रिया के अभाव में सन्तोष कहाँ? क्रिया करते-करते भाव आता है यदि यह मान लिया जाये तो क्रिया तो अनेक लोग करते हैं, भाव कहाँ? भाव स्वतः आता है, क्रिया अपेक्षित नहीं। कब आता है यह कहना भी कठिन है। चरण, मूर्ति भी भावोत्पादक रहे हैं और जहाँ ये दोनों ही न थे वहाँ भी भाव का आगमन हुआ है। अतः यह कहना कठिन है कि कब और कैसे भाव का उद्वेग होता है। होता है यही कहा जा सकता है, कैसे होता है यह कहना कठिन।

गोल चक्कर में बसी है दुनिया। जहाँ गोलमाल है विचारों का धर्मों का। एक दुनिया फिर धर्म अनेक क्यों? यही गोलमाल है - यही चक्कर है। एक देश में अनेक भाषा - भाषा भिन्न, धर्म भी भिन्न। जहाँ भिन्नता भिनभिना रही हो वहां शांति कहाँ, प्रेम कहाँ? देश पुकार - एकता। एक को समझे, देश को समझे तब न कहीं एकता हो। गोल चक्कर में फँसा हुआ प्राणी घबड़ाता है, छटपटाता है और चक्कर काटते काटते मर मिटता है किन्तु भाव कहाँ?

भाव वहाँ - प्रियतम है जहाँ। लोक चक्कर अन्य लोगों के लिए, भाव वाला भाव में लीन। ये दुनिया वाले अभाव की बातें करते कभी नहीं थकते। धर्म वाले मोटे मोटे ग्रन्थ लिख गये, उपदेशों की झड़ी लगा गये - शांति न दे पाये। क्यों? उन्हें तो आदर्शवाद फैलाना था, यथार्थवाद नहीं। आदर्शवाद की बातें सुनने में अच्छी लग सकती हैं कुछ व्यक्तियों को किन्तु कार्य में परिणत करना कठिन। मार खाने वाले मार खाते रहे किन्तु मारने वालों को रहम न आया। ऐसी दुनिया को नमस्कार। चल वहाँ जहाँ भाव मेरा स्वभाव।

★★★★★